बुद्ध-चित्रावली

लेखिका

कुमारी विद्या

प्रकाशक

मोतीलाल बनारसीदास

संस्कृत-हिन्दी पुस्तक विक्रेता

पो० ब० ७५ वाराणसी।

(बनारस)

१९५६

प्रकाशक
मोतीलाल बनारसीदास
पो० ७५ वाराणसी

मुद्रक —
मेवालाल गुप्त
बम्बई प्रिंटिंग काटेज
बास-फाटक, वाराणसी

आमुख

हिन्दी में भगवान् बुद्ध के जीवन-चरित्र सम्बन्धी ग्रन्थों का बडा ही अभाव है। बौद्ध-बाल साहित्य की ओर तो अभी तक लेखकों तथा प्रकाशको का ध्यान नही गया है। भगवान् बुद्ध की इस २५०० वी जयन्ती क शुभावसर पर बालकोपयोगी चित्रमय जीवन-चरित्र प्रस्तुत करने का मेरा विचार हुआ। चित्राङ्कन की ओर मेरी अभिरुचि बचपन से ही रही है। अतः मैने तथागत के जीवन सम्बन्धी ५६ चित्रों को बनाया और उनका परिचय सरल भाषा में कविता म लिख दिया। साथ ही गद्य मे भी संक्षिप्त परिचय देना उचित समझा। इस प्रकार मेरा सकल्प तथागत की पुण्य स्मृति में इस "बुद्ध चित्रावली" के रूप म पूर्ण हुआ।

आशा है मेरा यह प्रयास बच्चों के लिये लाभदायक सिद्ध होगा।

—कुमारी विद्या

बुद्ध-चरितावली

आज से ढाई हजार वर्ष से पहले उत्तर भारत में शाक्य-जनपद नामक एक गण-तंत्र राज्य था। वहाँ महाराज शुद्धोदन राज्य करते थे। उनकी दो रानियाँ थी। बडी रानी का नाम महामाया देवी था और छोटी का प्रजापती गौतमी। उन दोनों से राजा को एक भी संतान न थी।

उनदिनो भारत मे सवत्र अधामिकता बढ़ी हुई थी। लोग हिसा, दुराचार, परपीड़न आदि विभिन्न प्रकार के पाप कर्मों में लगे हुए थे। उस समय पापों के बोझ से यह धरती बोझिल हो गई थी। देवता तक इस विषम परिस्थिति से ऊब गये थे। सभी इससे त्राण के लिये किसी महापुरुष के प्रादुर्भाव की प्रबल कामना करते थे।

चार असख्य एक लाख कल्प से पुण्य सञ्चय में लगेहुए बोधि-सत्व उन दिनों तुषित लोक में अपना शान्तिमय जीवन बिता रहे थे।

एक दिन स्वर्ग लोक मे देवताओं की एक सभा हुई और यह निश्चय हुआ कि सभी देवता बोधिसत्व से चलकर प्रार्थना करें कि वे ससार में जन्म लेकर मानव मात्र की पीडा दूर करें और मनुष्यों को सन्माग दिखलावें।

देव-गण तुषित लोक में बोधिसत्व के पास गये और प्रार्थना किये कि ससार में जन्म लेकर आप मनुष्यों के दुःखों को दूर करें। बोधिसत्व ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्होंने देश, कुल, काल और माता-पिता का विचार कर महाराज शुद्धोदन के घर महामाया देवी के गर्भ से जन्म लेने का निश्चय किया।

बुद्ध-चित्रावली



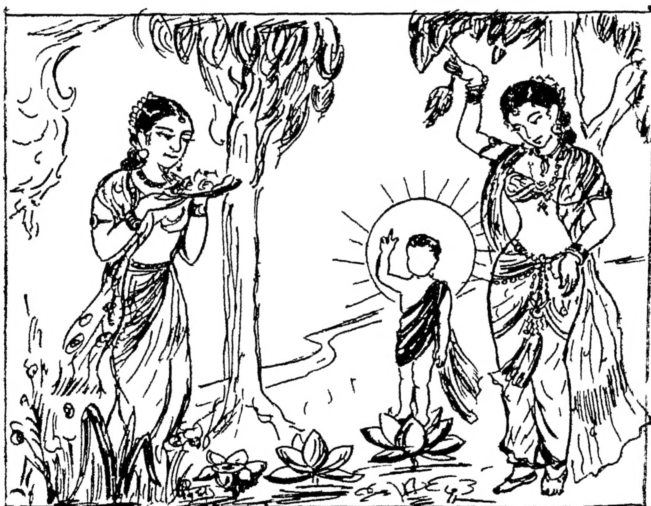
विनय किए सुरवृन्द स्वर्ग के, बोधिसत्व उर धारे।
प्राणि मात्र की व्यथा मिटाने, मानव बीच पधारें॥

एक रात्रि महामाया देवी ने स्वप्न देखा कि एक सफेद रंग का छः दाँतों वाला हाथी उनकी कोख में प्रवेश कर रहा है और आकाश से एक सफेद रंग का तारा टूटा है। प्रातः काल जब यह स्वप्न ब्राह्मणों से कहा गया, तब उन्होने कहा— "महाराज! चिन्ता न करें। आपकी देवी को गर्भ धारण हुआ है। यह गर्भ बालक है, कन्या नही। आपको पुत्र होगा।" राजाने उनकी बातों को सुनकर बडी खुशी मनाई और गर्भ रक्षा की सारी व्यवस्था की।

समय निकट आया देख कर महामाया देवी ने अपने पितृ गृह जाने की इच्छा की। राजा ने बडे सज धज के साथ उन्हे कपिलवस्तु से देवदह भेजने का प्रबध किया। मार्ग में लुम्बिनी नामक मनोरम शालवन में उनकी सैर करने की इच्छा हुई। उसी समय उन्हे प्रसव-वेदना हुई। शाल-वृक्ष की एक शाखा पकडे खडे ही उन्हें गर्भ-उत्थान हो गया। सिद्धार्थ ने जन्म लेते ही उत्तर दिशा की ओर सात पग गमन किया। उनके जहाँ जहाँ चरण पडे, पृथ्वी से कमल पुष्प निकल आये।



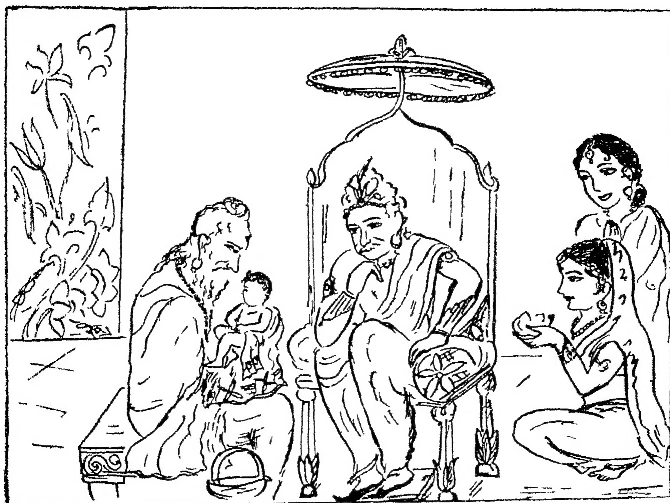
एक रात्रि माया देवी ने, अद्भुत स्वप्न निहारा ।
श्वेत हस्ति था गया कुक्षि में, दिखा शुभ्र नव तारा ।।



मंगलमयि थी घडी सुहानी, मजु शालतरु नीचे ।
पलभर में थे देव अनतरित, लुम्बिनि उपवन बीचे ।।

राजगुरु असित देवल ऋषि को सिद्धार्थ के जन्म की सूचना मिली तो वे बालक सिद्धार्थ के दर्शनार्थ आये। उन्होंने कुमार के लक्षणों को देखकर बतलाया कि यह उत्तम प्रव्रज्या को धारण करके बुद्ध बनेंगे, किन्तु मेरा बड़ा दुर्भाग्य है कि मै उस समय तक जीवित न रहूँगा।

बालक सिद्धाथ को बचपन से प्राणियों पर दया थी। वे शिकार करने के लिये जाकर भी तीर नहीं छोडते थे और पशु-पक्षियों को स्वच्छन्द विचरण करने देते थे।



ऋषिवर असित लखे नव शिशु को हुआ हर्ष अति भारी।
बोले वे 'यह बुद्ध बनेंगे दिव्य प्रव्रज्या-धारी'॥



शैशव की चचलता में भी, कभी बने न अहेरी।
मूक निरीह प्राणियों पर थी, पावन ममता घेरी॥

एक दिन देवदत्त के बाण से विधकर एक हंस फड़फड़ाता हुआ ऊपर से गिरा। सिद्धार्थ ने हंस का बाण निकाला, घाव धोया और अपनी गोद में ले लिया। हंस को देवदत्त ने उनसे माँगा, किन्तु उन्होंने नहीं दिया। यह बात राज सभा में गई। हंस के प्राण बचाने के कारण निर्णय सिद्धार्थ के पक्ष में हुआ। जब हंस उड़ने योग्य हो गया तो उसे उन्होंने उड़ा दिया।

खेत बोने के उत्सव के दिन कुमार सिद्धार्थ एक जामुन के पेड़ के नीचे बैठे-बैठे ध्यानावस्थित हो गये और महाराज शुद्धोदन हल चला रहे थे। सन्ध्या हो चली, वृक्षों की छाया ढल गई किन्तु जामुन के पेड़ की छाया ज्यों की त्यों बनी रही। राजा के साथ सभी लोगों ने इस आश्चर्य को देखा। पिता ने पुत्र को प्रणाम किया।



नील गगन में श्वेत हस था, उड़ता पख पसारे।
गिरा तीर से देवदत्त के, प्रभु करुणा कर धारे॥



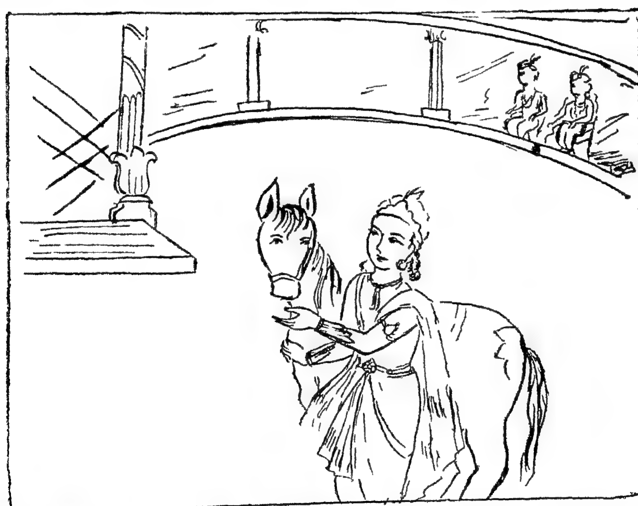
हल धरने का उत्सव आया, सब जन मोद मनाये।
किन्तु एक तरु की छाया में, कुँवर समाधि लगाये॥

कुमार सिद्धार्थ सयाने हुए। महाराज शुद्धोदन को उनके विवाह की चिन्ता हुई। मन्त्रियों की राय से एक उत्सव मनाया गया जिसमे सुन्दर तरुणियो को कुमार द्वारा उपहार दिये गये। उपहार लेने के लिये बारी बारी से सब राजकुमारियाँ आईं। सबसे अन्त में राजकुमारी यशोधरा आईं तो उन्हें कुमार ने अपने गले का हार दे दिया और अपनी प्रसन्नता प्रगट की।

यशोधरा के विवाह के लिये राजकुमारों के बल को परीक्षा हुई। सिद्धार्थ को एक घोड़ा घुड़सवारी के लिये दिया गया, जो बडा चञ्चल और उद्दण्ड था। सिद्धार्थ ने उसे तुरन्त काबू में कर लिया जिसे अन्य राजकुमार हार मानकर छोड़ दिये थे। इस प्रकार रण कौशल में घुडसवारी की परीक्षा में सिद्धार्थ विजयी हुए।



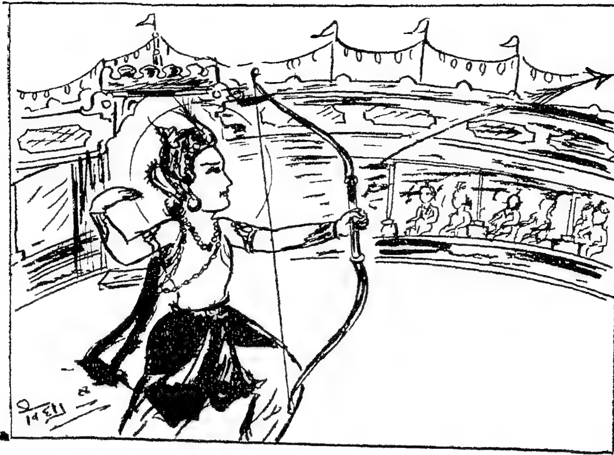
मंगल उत्सव की बेला में, राजकुमारी आई ।
मिला परम उपहार उन्हे, सिद्धार्थ कुँवर मन भाई ।।



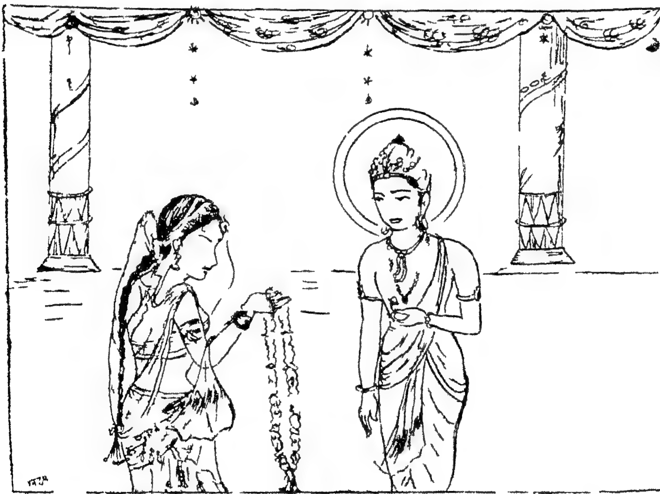
रणकौशल की हुई परीक्षा, जुटे वीर घमसानी ।
विजयी राजकुमार हुए थे, हार थका हय मानी ।।

धनुष बाण की भी परीक्षा हुई। सिद्धार्थ सब राजकुमारों से अधिक तीर चलाये तथा उस स्वयंवर में विजयी घोषित हुए।

सब प्रकार से विजयी सिद्धार्थ कुमार को राजकुमारी यशोधरा ने जयमाला पहनाई। दोनों का विधि पूर्वक विवाह हो गया।



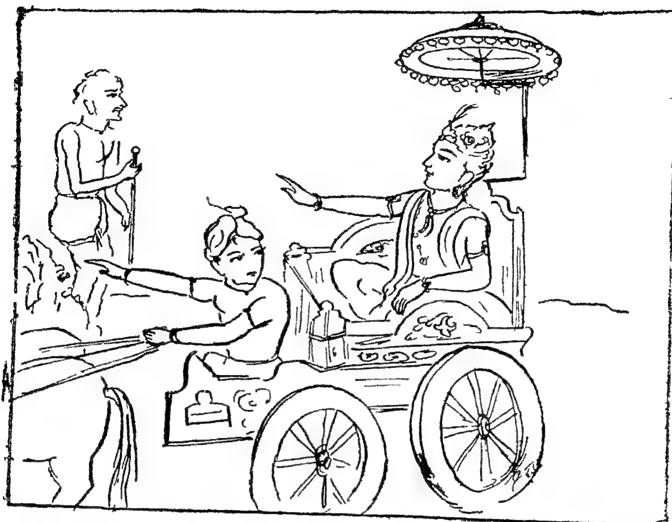
विजय हुई सिद्धार्थ कुँवर की, धनुष–बाण के साधन में।
शाक्य कुमार सभी हारे थे, स्वयवर के विजयागण में॥



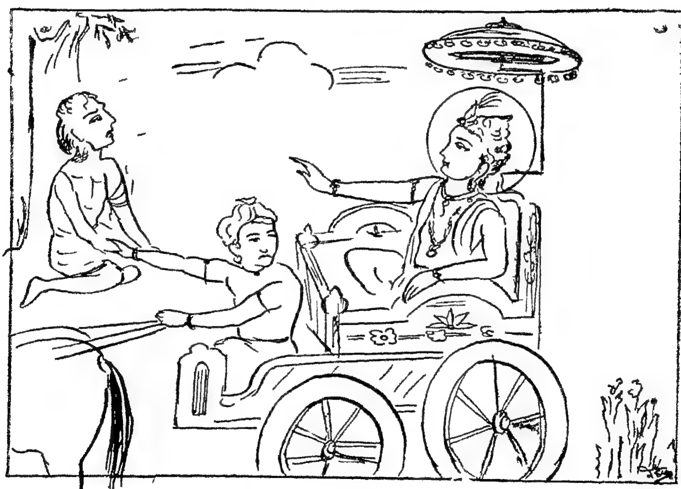
विजयी हुए स्वयबर में वे, शौर्य पराक्रम धारी।
हुए सुशोभित वरमाला से, यशोधरा–कर–धारी॥

सिद्धार्थ कुमार का समय अब प्रेम-पूर्वक व्यतीत होने लगा। राजा ने उनके लिये तीन प्रकार के भवन, तीन ऋतुओं के अनुरूप बनवा दिये थे। भोग-विलास की हर प्रकार की सामग्रियाँ एकत्रित करदी थी। एक दिन वे रथ पर बैठकर वाटिका सैर के लिये निकले। उन्होने एक वृद्ध को देखा जिसके सिर के बाल सफेद थे, शरीर जर्जर था और लाठो पकडे चल रहा था। उसका मुख उदास था। कुमार ने सारथी से पूछा—"यह कौन है?" सारथी ने "वृद्ध" कहकर यह भी कहा कि ससार के सभी प्राणी वृद्ध होते है। यह सुनकर सिद्धार्थ को बड़ा दुःख हुआ और वे वही से राज-महल लौट आये।

दूसरे दिन उन्होंने एक रोगी को देखा। उन्होंने सारथी से पूछा—"क्या सबको रोग होता है?" सारथी ने कहा—"हाँ" राजकुमार उस दिन भी दुःखो हो वही से लौट आये।



जर्जर तन था लाठी धारे, मुख पर घनी उदासी।
पूछे 'कौन ?' 'वृद्ध' सुन चौंके, राजभवन के वासी ॥



देह धरे का दंड भोगता, रोगग्रस्त बन प्राणी।
'कैसा अरे विधान देह का ?' करुणामय थी वाणी ॥

फिर एक दिन रथ मे बैठकर वाटिका की ओर जाते समय उन्होंने एक मृतक को देखा, जिसे उसके सम्बन्धी मरघट पर लेजा रहे थे। उन्होंने उसे देख सारथी से पूछा क्या सब की यही गति होती है ?" सारथी के "हाँ" कहने पर सिद्धार्थ का मन बहुत ही दुखी हुआ और वे उस दिन भी वही से लौट आये।

चौथे दिन राजकुमार ने मार्ग में एक विरक्त साधु को देखा जो शान्त रूप से मार्ग में चला जा रहा था। उन्होंने उसके पास जाकर कुछ प्रश्न किये और उसी मार्ग को अपनाने का निश्चय किया।



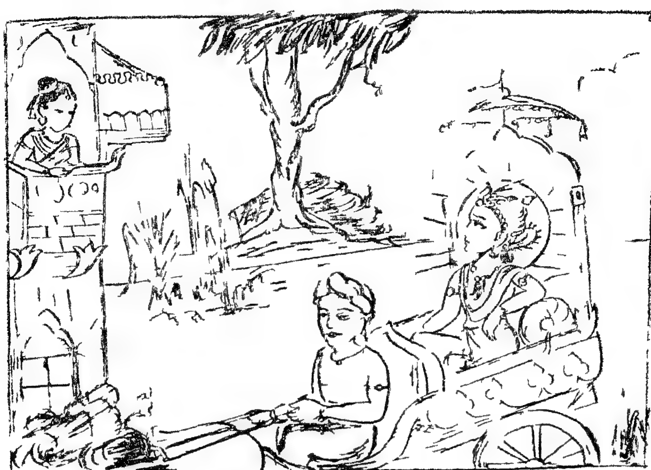
एक दिवस फिर देखा शव को, मरघट पर ले जाते।
प्रश्न किया 'क्या सभी मनुज हैं अरे यही गति पाते ?'



योगी मिला मार्ग में जाते, शान्त प्रव्रज्या धारी।
किये प्रश्न पा उत्तर समझे यही रूप मनुहारी ॥

राजकुमार राजभवन को लौट पडे। स्वर्ग के देवता उनके निश्चय को जानकर प्रसन्न हो उठे कि अब विश्व का कल्याण होगा। राजकुमारी कृशा गौतमी ने सिद्धार्थ के मनोहर रूप को देखकर सहर्ष कहा—"कितना शान्त है!" इसे सुनकर अपने गले का हार उसे दे दिये और वे शान्ति पाने के इच्छुक राजकुमार "शान्त" शब्द की महत्ता पर विचार करते हुए राजभवन आये।

यशोधरा ने एक पुत्र को जन्म दिया। सिद्धार्थ ने बढता हुआ बन्धन समझ कर उसका नाम 'राहुल' रखा। इधर राजा ने राजकुमार के लिये बहुत से पहरे बैठा रखे थे कि कहीं व घर से चले न जायँ। एक रात राजकुमार राजा के सारे प्रतिबन्धों, उनके बैठाये सारे पहरों तथा अपने नन्हें शिशु राहुल और अपनी पत्नी यशोधरा को त्यागकर कथक नामक घोडे पर सवार हो छदक के साथ "महाभिनिष्क्रमण" कर गये। देवताओं ने उनकी पूरी सहायता को।



लौट चले सिद्धार्थ भवन को, देव मण्डली डोली।
होगा अब कल्याण विश्व का, कृशा गौतमी बोली॥



नन्हे शिशु राहुल कुमार को, प्रयणमयी सुकुमारी।
त्याग चले वे अर्ध निशा में, जग की ममता हारी॥

रात में ही तीन राज्यों को पार कर सिद्धार्थ कुमार साठ योजन दूर चले गये। प्रातः काल अनोमा नदी मिली। वहाँ उन्होंने अपने सभी राजसी वस्त्राभरण उतार कर छदक को दे दिये और कथक घोडे को भी उसे सोंप दिये।

राजकुमार ने तलवार से अपने केशों को काटकर आकाश में फेंक दिया और सहम्पति ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त काषाय वस्त्र को ग्रहण कर भिक्षु बन गये। इसे देख छदक रोने लगा। वह रोता हुआ कपिलवस्तु के लिये चल दिया और सिद्धार्थ राजगृह की ओर।



कथक अश्व मूक था रोया, लिए व्यथा का भार।
साथ लिए छन्दक को थे वे, गये अनोमा पार॥



गिरे अश्रु छन्दक के उस क्षण, राजवेश जब त्यागे।
ले काषाय वस्त्र निज तन पर, गये विपिन पथ आगे॥

राजगृह में पहुँच कर तपस्वी सिद्धार्थ ने भिक्षा पात्र लेकर नगर में भिक्षाटन किया। उन्हे भिक्षा में जो कुछ मिला, उसे प्रेम-पूर्वक पाडव पर्वत की छाया में बैठकर भोजन किया।

उस समय राजगृह में आलारकालाम और उद्रक रामपुत्र दो बडे प्रसिद्ध महात्मा थे। सिद्धार्थ उनके पास गये और उनके "दर्शन" से परिचय प्राप्त किया, किन्तु उनके सूखे दर्शन और प्राणायाम सिद्धार्थ को शान्ति न दे सके।



नगर राजगृह में जा पहुँचे, करमें भिक्षापात्र लिए।
भिक्षाटन कर प्रेमभाव से, खाये जो नर नारि दिये ॥



थे आलार तपस्वी उद्रक, राजगृही के वासी।
बोधिसत्व थे गये वहाँ भी, बन जिज्ञासु प्रवासी ॥

विचरण करते सिद्धार्थ नेरञ्जरा नदी के किनारे उरुवला पहुँचे। सेनानी नामक कस्बे के धनी सेठ की पुत्री सुजाता ने उन्हे वृक्ष देवता समझकर वैशाख-पूर्णिमा के दिन खीर दान दिया। उसे सिद्धार्थ ने ग्रहण कर उञ्चास कौर करके भोजन किया।



उरु बेला में वट तरु नीचे, लख कर महातपस्वी को।
लाई पायस शुभा सुजाता, देने अर्घ मनस्वी को॥

खीर को खाने के पश्चात सिद्धार्थ बोधि वृक्ष के पास गये और वज्रासन पर बैठ उन्होंने यह सङ्कल्प किया—"चाहे मेरा चमड़ा, खून, मास, सूख जाय, हड्डी ही क्यों न बाकी रहे किन्तु बिना बुद्धत्व को प्राप्त किये इस स्थान को नहीं छोड़ूँगा।"

जिस समय सिद्धार्थ बोधिवृक्ष के नीचे वज्रासन लगाये बैठे थे। मार ने भयानक रूप से उन पर आक्रमण किया। मार को हार खानी पड़ी। वैशाख-पूर्णिमा की पुण्य रात्रि में सिद्धार्थ बुद्धत्व प्राप्त कर भगवान् बुद्ध बन गये।



किये कृतार्थ ग्रहण कर पायस, गये बोधितरु नीचे।
वज्रासन आसीन हुए प्रभु, प्रण कर आँखे मीचे।।



काँप उठा जगती का वैभव, काँप उठी धरणी।
हार गया अन्तक का छल बल, रूप मयी तरुणी।।

भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त करके बोधिवृक्ष के नीचे ही अपने प्राप्त ज्ञान के चिन्तन में एक सप्ताह व्यतीत किया।

दूसरे सप्ताह में भी भगवान् ने बोधिवृक्ष की ओर अपलक नेत्रों से देखते हुए व्यतीत किया।



मार विजय कर शुद्ध बुद्ध बन, बैठे शान्त सुधीर ।
सात दिवस बीते चिन्तन में, रहे देव गम्भीर ॥



था द्वितीय सप्ताह पुण्यमय, महाबोधि की छाया में ।
देव दिये सम्मान वृक्ष को, नव करुणा की माया में ॥

तीसरे सप्ताह वहीं बोधिवृक्ष के पास ही चक्रमण करते रहे ।

चौथे सप्ताह में ऋद्धि से निर्मित रत्नघर में बैठकर धर्म की गम्भीरता का चिन्तन करते रहे । उसी सप्ताह उनके सिर से छः रंग की ज्योति फूट निकली ।



सात दिवस कर पाद चक्रमण,, बोधिवृक्ष के नीचे।
परमानन्द पूर्ण घड़ियों को, बुद्धज्ञान से सींचे ॥



था चतुर्थ सप्ताह रत्नघर में बीता सुख चिन्तन में।
फूट चली ज्योतिर्मय धारा, परम प्रकाश हुआ मन में ॥

पाँचवें सप्ताह में बोधि वृक्ष के नीचे जब भगवान् विराजमान थे, तब मार की तृष्णा, अरति और रगा नामक कन्याओं ने उन्हें विचलित करने का प्रयत्न किया, किन्तु वे सम्यक् सम्बुद्ध के समक्ष हार कर वापस लौट गईं।

छठे सप्ताह बहुत बड़ी मेघ माला पूर्व से उठी और घनघोर वर्षा होने लगी। उस समय मुचलिन्द नामक नाग ने अपने शरीर से भगवान् के सारे शरीर को लपेट कर सिर पर अपने फण का छत्र बना सप्ताह भर भगवान् की वर्षा से रक्षा की।



तरुवर छाया में प्रभु बैठे, देखीं मार कुमारी।
गईं उन्हें विचलित करने, पर रहीं स्वयं ही हारी ॥



उठी मेघ माला पूरब से, बरसा शुरू हुई भारी।
आ मुचलिन्द नाग ने प्रभु की, रक्षा की वर फणधारी ॥

सातवें सप्ताह भगवान् को तपस्सु और भल्लिक नामक उत्कल देश के दो व्यापारियों ने मिष्ठान्न अर्पण किया था, जिसे भोजन कर उन्होंने उन्हें अपने सिर से केश प्रसाद स्वरूप दिये थे।

भगवान् को धर्मोपदेश करने का विचार हुआ, लेकिन धर्म की गम्भीरता को सोचकर उनका मन फिर सकुचित हो ही रहा था, कि सहम्पति ब्रह्मा ने आकर प्रार्थना की और तथागत धर्म प्रचारार्थ वाराणसी की ओर चल पड़े। उस समय पशु पक्षी भी खुशी से नाच उठे। देवताओं ने भी आनन्द मनाया।



सप्तम था सप्ताह तथागत, बैठे थे कुछ सोच रहे।
"अर्पित दान देव चरणो में", हाथ जोड कुछ वणिक कहे ॥



धर्मचक्र का पुण्य प्रवर्तन, करने प्रभु प्रस्थान किये।
नाच उठी विहगों की टोली, प्रभु के प्रतिसम्मान लिये ॥

भगवान् वाराणसी के पास ऋषिपतन मृगदाय में आये और कोण्डञ्ञ, भद्दिय, वप्प, महानाम और अस्सजी—इन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को धर्मचक्र प्रवर्तन सुत्त का उपदेश दिये। हमारी राष्ट्रीय पताका पर जो चक्र है, वह इसी धर्मचक्र प्रवर्तन का प्रतीक है।

धर्मचक्र-प्रवर्तन करने के पश्चात् भगवान् पुनः उरुवेला गये वहाँ बिल्व काश्यप नामक जटाधारी ब्राह्मण की अग्निशाला में एक विषधर सर्प रहता था। भगवान् ने अग्नि शाला में आसन लगा सर्प का मर्दन किया और काश्यप को उसके एक सहस्र शिष्यों सहित दीक्षित किया।



धर्मचक्र प्रवर्तन को प्रभु, ऋषिपत्तन में आए।
कर धर्मामृत वर्षा तब वे, साधक पाँच पिलाए॥



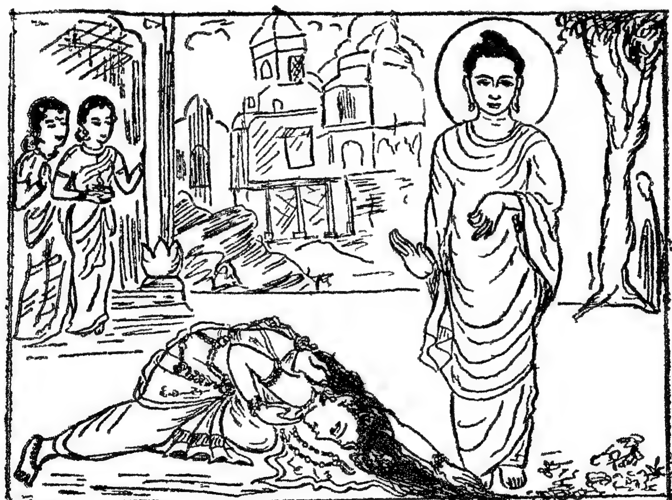
गये तथागत एक दिवस थे, काश्यप ब्राह्मण के घर में।
निकला विषधर, देखा प्रभु को, शान्त हो गया पलभर में॥

भिक्षुओं सहित चारिका करते भगवान् राजगृह पहुँचे। राजा बिम्बिसार ने भगवान् का भव्य स्वागत् किया। भगवान् ने उसे उपदेश दिया। उसकी ज्ञान की आँखें खुल गई और उसने बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण ग्रहण की। दूसरे दिन उसने भगवान् को अपना वेणुवन नामक आराम समर्पित कर दिया।

भगवान् राजगृह से कपिलवस्तु पधारे। राहुल-माता यशोधरा को भी उन्होंने दर्शन दिया। उन्हें भिक्षु रूप में देख राहुल माता उनके चरणों पर गिर पड़ी और अपने नेत्र-जल से उनके चरणों को धो दिया, किन्तु उसे प्रतीत हुआ कि जैसे वह एक प्रज्वलित अग्नि के निकट आई है, जिसका तेज असह्य है। उसे भगवान् ने उपदेश दिया।



राजगृहाधिप हुए मुदित अति, लखि अमिताभ पधारे।
दिव्य देव सम्मान हेतु वे स्वागत साज सँवारे॥



आए कपिलवस्तु में प्रभुवर राहुल माता द्वारे।
नयनों के आँसू के जल से, उसने चरण पखारे॥

राहुलमाता यशोधरा ने भगवान् के भोजन करके बाहर जाते समय अपने पुत्र राहुल को भगवान् की ओर सङ्केत कर के सिखाया-" हे पुत्र ! जो वह दिव्य तेजोमय योगिराज भिक्षु संघ के आगे आगे जा रहे हैं वह तुम्हारे पिता हैं। उनके निकट जाकर अपना पैतृक धन माँगो।"

राहुल भगवान् के पास गया और "श्रमण ! तेरी छाया सुखद है।" कहा। भगवान् ने उसे भिक्षु बनाया। राहुल ने शीघ्र ही अर्हत्व को प्राप्त कर लिया।



जीवन धन थे भिक्षु भेष में, क्या देती गोपा रानी।
था अनुरूप एक राहुल ही, देकर बनी महादानी ॥



'तव छाया है सुखद तथागत' कहता राहुल आया।
बचपन में ही परम लक्ष्यको, बन अनुगामी पाया ॥

श्रावस्ती में अगुलिमाल नामक एक डाकू रहता था। जो मनुष्यों की अगुलियों को काटकर माला बना पहनता था। उसने १९९ व्यक्तियों की हत्या कर चुकने के बाद वह अपनी माता की भी हत्या करने के लिये प्रस्तुत था। भगवान् ने अगुलिमाल को उपदेश देकर हिंसक कर्म से विरत कराया। अगुलिमाल भी तथागत की भिक्षु-मण्डली का एक रत्न बन गया।

श्रावस्ती की मिगार माता विशाखा महोपासिका ने पूर्वाराम नामक एक सुन्दर विहार बनवा कर भिक्षु संघ के निवास के लिये भगवान को दान दिया।



श्रावस्ती क वन्य प्रान्त में, डाकू अंगुलिमाल रहा।
देख तथागत करुणा प्लावित, पाया जीवन एक नया ॥



श्रावस्ती की वधू विशाखा ने बनवाया पूर्वाराम।
दिया बुद्ध को श्रद्धानत हो, हुआ भव्य वह संघाराम ॥

मिगार माता विशाखा एक दिन भगवान् के पास गई और उ ने दान देने के निमित्त आठ वरदान मांगे। भगवान् ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली तब से वह प्रसन्न मन सदा भिक्षुसंघ को दान देने में निरत रही।

देवदत्त भगवान् बुद्ध को मार डालना चाहता था। उसने अनेक प्रयत्न किये। एक दिन अजातशत्रु से कुमन्त्रणा कर देवदत्त नालागिरि नामक उन्मत्त हाथी को शराब पिलाकर जिधर से भगवान् आ रहे थे उधर छुड़वा दिया। हाथी भगवान् की ओर दौड़ा हुआ गया। भगवान् ने मैत्री भावना से हाथी को आप्लावित कर दिया। हाथी अति सौम्य भाव से आकर अपनी सूँड नीची करके खड़ा हो गया। भगवान् ने प्यार से अपने दाहिने हाथ से उसके कुम्भ को स्पर्श किया। वह भगवान् के चरण चाटकर अपने हथिसार लौट गया।



एक दिवस वह गई विशाखा, माँगी श्रेष्ठ आठ वरदान ।
दिया सुगत ने प्रमुदित हो, वह करने लगी महा तब दान ॥



नालागिरि द्वारा वध इच्छा, देवदत्त की हुई विफल ।
मत्त गयन्द झुका श्रद्धा से, अपना जीवन किया सफल ॥

श्रावस्ती की कृशा गौतमी नामक एक स्त्री का पुत्र मर गया वह पुत्र का मृत शरीर लेकर भगवान् के पास आई। भगवान ने कहा—"जिस घर में कोई न मरा हो, उस घर से एक मुट्ठी सरसों ला दो तो, मै तुम्हारे पुत्र को जिला दूँ।" कृशा गौतमी बहुत घरों में भटकती रही। अंत में वह स्वयं समझ गई कि जब सभी घरों में मृत्यु होती है, सब को मरना ही है तो उसका पुत्र ही कैसे जी सकता है। वह भगवान् के पास गई और प्रव्रजित होकर भिक्षुणी हो गई। कृशा गौतमी रूक्ष चीवर धारिणी भिक्षुणियों में सब से प्रधान मानी जाती थी।

पटाचारा अपने दो पुत्रों, पति, माता-पिता और भाई की मृत्यु के दुख से पागल होकर इधर उधर घूमती थी। एक दिन वह घूमती हुई जेतवन विहार की ओर आ निकली और भगवान् के पास गई। भगवान् ने कहा—"भगिनी। चैतन्य लाभ कर। तू अपनी खोई स्मृति को पुनःप्राप्त कर" भगवान् की कृपा से उसे होश आ गया। भिक्षुओं ने उस पर वस्त्र डाल दिये उन्हे जिन्हे उसने पहन लिया। भगवान् क उपदेश को सुनकर वह भिक्षुणी हो गई और अनित्य, दुख और अनात्म की भावना करते हुए उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया।



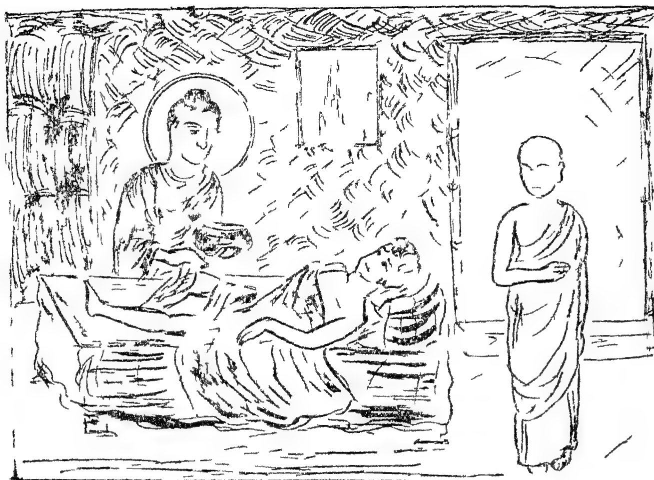
श्रावस्ती की कृशा गौतमी, आई निज मृत शिशु लेकर।
सुन दृष्टान्त शान्ति पाई वह मन की विह्वलता खोकर ॥



जिसे नहीं थी सुधि वस्त्रों की, आई अति दुखिया नारी।
शरण त्रिरत्न पहुँचकर भूली, मन की व्याकुलता सारी ॥

एक भिक्षु रोग ग्रस्त थे वह अपने शरीर को गदगी में लथपथ पड़े थे। किसी का भी उनकी ओर ध्यान न था। भगवान् वहाँ गये और आयुष्मान आनन्द की सहायता से उन्हें उठाकर नहलाये और उनकी सेवा किये। तथागत ने भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा—"भिक्षुओ! तुम्हारे माता-पिता, भाई बहिन कोई नहीं हैं यदि तुम परस्पर एक दूसरे को सेवा नहीं करोगे तो कौन करेगा? भिक्षुओ! जो रोगी की सेवा करता है वह मेरी सेवा करता है।"

राजगृह का शृगाल-गृहपति-पुत्र प्रातःकाल उठ स्नान कर सभी दिशाओं को नमस्कार करता था। एक दिन भगवान् ने उसे ऐसा करते देख समझाया और बतलाया कि माता-पिता, श्रमण ब्राह्मण, आचार्य नौकर-चाकर और स्त्री की सेवा करना ही दिशाओं का नमस्कार करना है।



रोगग्रस्त लख एक भिक्षु को, दशबल पास पधारे।
परिचर्या कर प्रेमभाव से बिगडा रोग सुधारे॥



युवक शृगाल पूजता था नित, प्रातः सभी दिशाओं को।
करुणा कर प्रभु थे समझाये, अर्चन के शुचि भावों को॥

चिचा नामक एक तरुणी काष्ठ और चीथडों से निर्मित नकली पेट बनाकर भगवान् को अपमानित करने के लिये धर्म सभा में गई और कहने लगी—"हे गौतम ! तुम बडे चरित्र हीन हो। तुम्हारे अत्याचार से ही मुझे गर्भ रह गया है। अब मै कहाँ जाऊँ ? मेरी रक्षा करो।" भगवान् ने कहा "चिचा ! तू क्यों झूठ कह रही है ? सत्य का परित्याग करना महापाप है।" कहकर मौन धारण कर लिया। कुछ ही क्षण के भीतर चिंचा का वह नकली पेट खिसक कर भूमि पर गिर पडा चिचा का रहस्य खुल गया और भगवान् की प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई।

भगवान् श्रावस्ती में चमत्कार प्रदर्शन कर अपनी माता को उपदेश देने के लिये तावतिंस भवन गये और वहाँ तीन महीने तक उपदेश किये। धर्म-श्रवण कर माता मायादेवी ने श्रोतापत्ति फल को प्राप्त किया। वहाँ से भगवान् संकाश्य नगर में आश्विन-पूर्णिमा को उतरे। जहाँ देवता और मनुष्यों ने एक साथ भगवान् का स्वागत किया।



काष्ठ-चीथड़ों से निमित कर बनी गर्भिणो सी नारी।
आई चिञ्चा छल करने को, ले कुभावनायें भारी॥



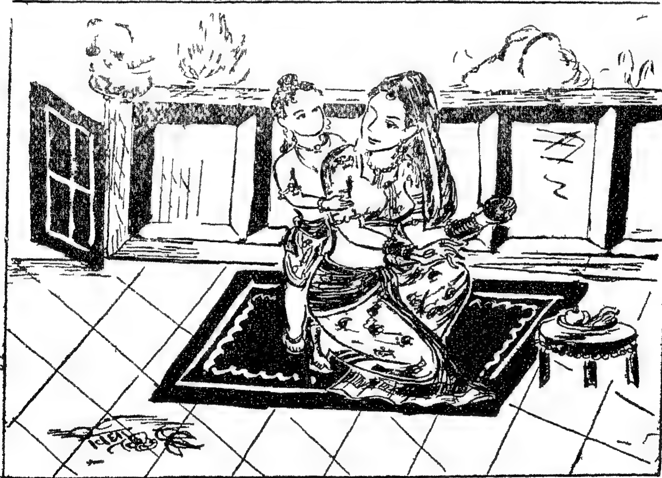
स्वर्गलोक में जा माता को, कर उपदेश तथागत।
उतरे थे सकाश्य नगर में, किये देव नर स्वागत॥

कौशल नरेश प्रसेनजित का सेनापति बन्धुल मल्ल की पत्नी मल्लिका को कोई सन्तान न थी। बन्धुल मल्ल ने उस पुत्र विहीना को घर से निर्वासित कर दिया। वह श्रावस्ती से कुशीनगर जाती हुई भगवान् के दर्शनार्थ जेतवन बिहार में गई। भगवान् ने उसे घर लौट जाने की सलाह दी। और कहा—"तू चिन्ता न कर। पुत्रवती होगी।

तथागत के आशीर्वाद से उस वीराङ्गना मल्लिका को सोलह जोडे पुत्र हुए। उसने भगवान् के परिनिर्वाण होने पर अपने महालताप्रसाधन को भगवान् की रथी पर चढ़ा दिया था और प्रसन्नता-पूर्वक धार्मिक जीवन व्यतीत किया था।



सेनापति बन्धुल की पत्नी, हो निर्वासित घर से।
पुत्र विहीना चली मातृ गृह, रुकी बुद्ध नर वर से ॥



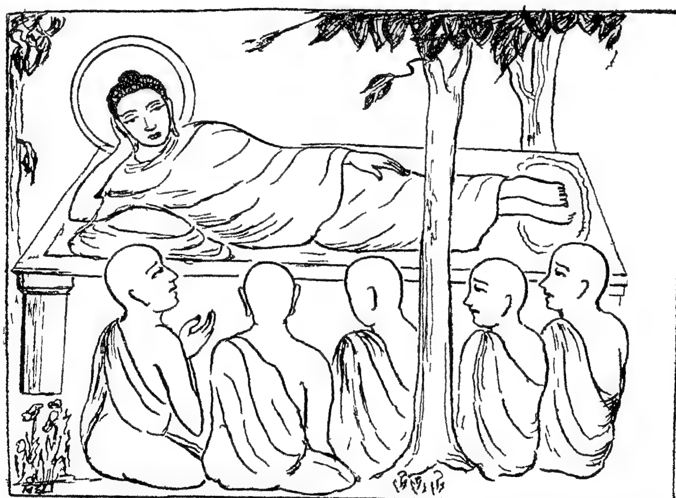
पा आशीस तथागत की वह, वीर मल्लिका रानी !
हुई निपूता पुत्रवती थी, अहो कारुणिक ज्ञानी !!

वैशाली की प्रसिद्ध गणिका अम्बपाली ने भगवान् को अपने यहाँ निमन्त्रित कर भोजन कराया और अपनी आम्र-वाटिका में बने बिहार को भगवान् को दान कर दिया। पीछे वह अपने पुत्र भिक्षु विमल कौण्डिन्य के उपदेश से प्रव्रज्या ग्रहण की तथा अनितता का विचार करते हुए ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन को सफल कर लिया।

पैतालीस वष तक बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय पैदल घूम घूम कर उपदेश देते हुए अस्सी वर्ष की अवस्था में तथागत कुशीनगर पहुँचे। मल्लों के शालवन उपवत्तन में जोडे शालवृक्षों के नीचे वैशाख पूर्णिमा को परिनिर्वाण मच पर लेटे हुए उन्होंने अपना अन्तिम उपदेश दिया—"भिक्षुओ! सभी सस्कार नाशवान् हैं, अप्रमाद के साथ जीवन लक्ष्य को पूर्ण करो।"



वैशाली की अम्बपालिका, गणिका पास पधारी।
कर बिहार का दान सुगत को, अपना जन्म सुधारी॥



कुशीनगर की पुण्य भूमि में, युगल शालतरु के नीचे।
दे अन्तिम उपदेश तथागत, अमिय वारि सब पर सींचे॥

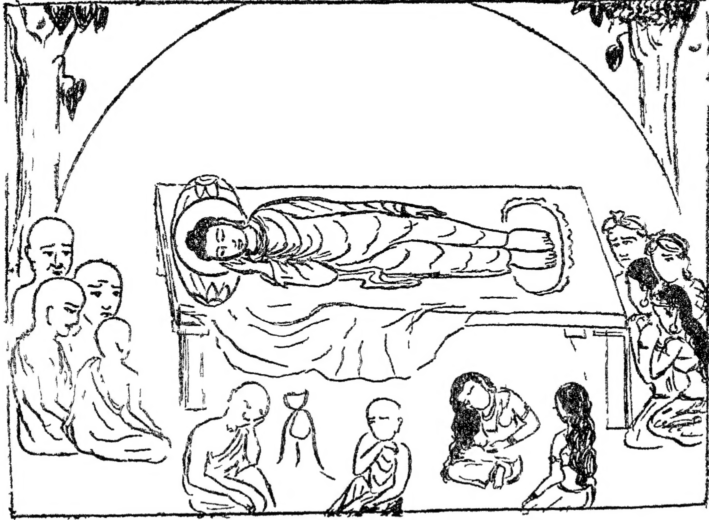
अन्तिम उपदेश देने के पश्चात् वह भुवन-प्रदीप सदा के लिये बुझ गया। कुशीनगर के शालवन में ही तथागत का महापरिनिर्वाण हो गया।

आज कुशीनगर के आम्र एव शाल वृक्षों के उपवन में, तथागत की परिनिर्वाण भूमि में एक सुन्दर स्तूप और मन्दिर सुशोभित है। मन्दिर में तथागत की एक भव्य प्रतिमा है जो शताब्दियों से तथागत के परिनिर्वाण स्थल की स्मृति को जन मन में जागृति करते विद्यमान है।

तथागत की परिनिर्वाण-भूमि परम ही सुन्दर है। वहाँ की नैसर्गिक सुन्दरता अनिवर्चनीय है। जहाँ नर नारी कुशीनगर की अतीत कहानी कहते अपने को धन्य मानते हैं। उस पावन नगरी के स्तूप एवं मन्दिर को मेरा शतशः प्रणाम है।

तथागत को मेरी यह परम श्रद्धा-पूर्वक की गई वन्दना स्वीकार हो।

———



कुशीनगर की पुण्य भूमि है, कसकमयी कल्याणी।
पाये प्रभु निर्वाण जहाँ पर, गूँजी अन्तिम वाणी॥



आम्र शाल तरु के उपवन में, शोभित है सुन्दर स्तूप।
है समीप प्रभुवर की प्रतिमा, अति ही पावन दिव्य अनूप ॥



कुशीनगर सौदर्यमयी है, नगरी परम सुहानी।
जहाँ रमणियाँ हंस चुगाती, कहते भूत कहानी॥



भाव भावुक अश्रु-अञ्जलि और क्या है शेष ?
वन्दना तव चरण में, हे कारुणिक विश्वेश ॥